RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-12
December -2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

वेदों में मानवाधिकार विमर्श

डॉ. पुष्पा

सहायक आचार्य (संस्कृत), गौरी देवी राज. महिला महाविद्यालय, अलवर (राज0)

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया'' मानवाधिकार की अवधारणा का यह सूत्रवाक्य है। मानवाधिकारों का वर्णन वैदिक वाड्.मय में सशक्त रूप से वर्णित है। वेद भारतीय संस्कृति के मूल स्त्रोत है। वेदों के पठन–पाठन द्वारा हमें समाज में उचित ढंग से जीने का मूल मंत्र प्राप्त होता है कि हमें कैसे व्यवहार करना चाहिए, रहन–सहन, आचार–विचार, अभीष्ट, अधिकार, कर्तव्य क्या है ? इत्यादि सभी विविध पक्षों का मूलभूत ज्ञान भी प्राप्त होता है।मानव सभ्यता के विकास के दौर में हमें देखते हैं कि प्रत्येक मानव समाज में कई प्रकार के भेदकारक तत्व विद्यमान रहते हैं। भाषा, रंग–रूप, जाति, लिंग, मानसिक स्तर, धन, नस्ल, धर्म इत्यादि के स्तर पर लोगों के साथ भेदभाव किया जाता है। इन सबके अतिरिक्त समाज में कुछ अनिवार्यताएँ हैं जो प्रत्येक व्यक्ति की मिलनी चाहिए। मानवाधिकार सरल शब्दों में मानव की मिलने वाले अनिवार्य अधिकार है जो जन्म से मिलते हैं। किसी राज्य, शासक, व्यक्ति की देन नहीं है। इन मानव के अधिकारों की सार्वभौम घोषणा ने मानवाधिकारों की व्यवस्था को एक आन्दोलन का रूप दिया और इसके संदर्भ में समय–समय पर कई अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाओं के साथ ही मानवाधिकार आयोग व उसके सहयोग रूप में अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर व्यवस्था की जाने लगी। मानवाधिकारों को व्यापक और सशक्त रूप प्रदान करते हुए 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा की। जिसमें यह स्वीकार किया गया कि कानून की दृष्टि में सभी व्यक्ति एक समान है, उनमें किसी प्रकार का भेद अनुचित है। सबको अपनी बात कहने की स्वतंत्रता है, अपना धर्म, रीतिरिवाज, आस्था, विश्वास सम्बन्धी मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा। सबको समान रूप से जीने का अधिकार, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकार, शिक्षा का अधिकार इत्यादि ऐसे अधिकार हैं जो मानवाधिकारों के अन्तर्गत आते है। समस्त शास्त्रों में सर्वोपरि है 'वेद' वेदाध्ययन द्वारा मानवाधिकारों को अधिक संरक्षण और संवर्धन कर सकते हैं ।

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो हमारी प्रकृति या स्वभाव में अंतर्निहित है, जिसके बिना मनुष्य अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नहीं कर सकता। मानवाधिकार हमें पूर्ण रूप से विकसित होने के लिए अवसर प्रदान करते हैं। कभी–कभी इन्हें मूल अधिकार, नैसर्गिक अधिकार या जन्मजात अधिकार भी कहा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार के संरक्षण के संबंध में महत्वपूर्ण प्रयास संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा प्रत्येक वर्ष 10 दिसम्बर, 1948 को किया गया तभी से 10 दिसम्बर की अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस मनाया जाता है। भारत में मानवाधिकार आयोग की स्थापना 27 सितम्बर, 1993 को की गई। देश के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय प्राप्त है। भारतीय संविधान में वर्णित अधिकारों में स्वतंत्रता का अधिकार, समानता का अधिकार, संस्कृति व शिक्षा का अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरूद्ध अधिकार व संवैधानिक उपचारों का अधिकार सम्मिलित है। वर्तमान में मानवाधिकार के विशाल क्लेवर का प्रारंभ भले ही पाश्चात्य देशों से हुआ किंतु इसका मूल विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में परिलक्षित होता है। हालांकि मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा बाद में हुई है परन्तु वेदों में मानवाधिकार विविध रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं यथा – वेदों में न्याय, समानता, बंधुत्व आदि ऐसे मानवीय मूल्यों का समावेश किया गया है जो मानवाधिकारों के प्राणस्वरूप है। वेदों में चरित्र निबन्धों के माध्यम से मानवाधिकारों की प्रतिष्ठा की गई है जो निम्न रूप में वर्णित है यथा –

1. **<u>स्वतंत्रता का अधिकार</u>**– जिस प्रकार भारतीय संविधान में व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त की है जैसे – आजीविका अपनाने की स्वतंत्रता, भ्रमण की स्वतंत्रता, निवास और वाक् की स्वतंत्रता, अपनी भावनाओं को व्यक्त करने की स्वतंत्रता बिना किसी को हानि पहुँचाए। इसी प्रकार वैदिक समाज में प्रत्येक व्यक्ति को जीविकोपार्जन की स्वतंत्रता थी। प्रत्येक ग्राम में बढ़ई, कुम्हार, लुहार, रंगकर्मी इत्यादि का वर्णन मिलता है।[2] यजुर्वेद के पुरूषमेघ सूक्त में किसान, चरवाहे, गड़रिये, बड़ई, रथकार, नापित, धोबी, लकड़हारे, कुम्हार, लुहार, रंगरेज, रस्सी, टोकरी, मालाएँ, पादुकाएँ बनाने वालों का उल्लेख मिलता है। वस्त्र निर्माण का कार्य स्त्रियाँ भी करती थी। ऋग्वेद में यज्ञ के अवसर पर धारण करने वाले वस्त्रों का निर्माण भी दो स्त्रियों के करने का उल्लेख मिलता है। शिक्षा प्राप्ति, विवाह, यज्ञ करने, धार्मिक अनुष्ठान करने, संस्कृति व संस्कारों के संरक्षण की स्वतंत्रता प्रायः दृष्टिगोचर होती है।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

02.समानता का अधिकार– भारतीय संविधान में देश के समस्त नागरिकों को समानता का अधिकार दिया है। इसके अनुसार कानून की दृष्टि में सभी नागरिक एक समान है। वैदिक संस्कृति में प्राणस्वरूप अनुस्यूत 'वसुधैव कुटुबकम' समानता और सर्वकल्याण की भावना का बोधक है। मन्त्र में प्रार्थना है कि सभी लोग एकत्र हो जाएँ, एक समान बोले, सबके मन एक जैसे हो जाएँ जिस प्रकार देवगण समान गति वाले होकर यज्ञ में हवियों रूपी अन्न ग्रहण करते हैं वैसे ही हम सभी लोग एक समान गति वाले होकर धनादि ग्रहण करने वाले हो जाएँ।[3] इसी प्रकार अथर्ववेद में भी कहा है – सामाजिक एकता के लिए एक सा न्याय, एक सा भोजन तथा मनोविनोद आदि भी आचरणीय है। वेदों में व्यष्टिगत कल्याण की बात नहीं अपितु समष्टिगत कल्याण की अवधारणा समाहित है। वर्तमान परिस्थितियों में वेदों की आदर्श भावना अनुकरणीय है जिससे हम समाज की दिशा व दशा दोनों को परिवर्तित कर सकते हैं।

03.धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार– वेदकालीन समाज में यज्ञ की महती उपयोगिता थी। प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार प्रदान था कि वह अपनी इच्छा से यज्ञ सम्पादित कर एकता था। धर्म व्यक्ति का नीजि मामला है इसमें किसी भी अन्य व्यक्ति को हस्तक्षेप की अनुमति नहीं दी जाती है। अतः सभी जन अपनी इच्छा से धार्मिक उत्सवों का आयोजन तथा उसमें प्रतिभागिता करने के अधिकारी होते थे। योग, समाधि, तपस्या, चार धामों की यात्रा, विविध संस्कारों को करने कराने की स्वतंत्रता, विविध यज्ञ, धार्मिक आयोजन में सम्मिलित होना इत्यादि व्यक्ति के अपने अधीन होते थे। वैदिक संस्कृति धर्म प्रधान संस्कृति है जिसमें प्रत्येक कार्य को करने के लिए यज्ञों को करने का विधान बताया गया है। धर्म को वैदिक संस्कृति में प्राणस्वरूपा स्वीकार किया गया है। तत्कालीन समय में धर्म सबका व्यक्तिगत विषय था, जिसमें किसी का हस्तक्षेप नहीं होता था। व्यक्ति इच्छानुसार धर्म अपनाने में स्वतंत्र था, जो कि भारत राष्ट्र की अपनी विशेषता है क्योंकि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है।

04.शिक्षा का अधिकार– शिक्षा का वह साधन है जिसके माध्यम से व्यक्ति असभ्य से सभ्य बन सकता है अपना संस्कार, शोधन व परिमार्जन करता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 में व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार तथा अपनी संस्कृति के संरक्षण व संवर्धन का अधिकार प्राप्त है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में ऋषि कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति के प्रति देव बुद्धि का विकास करने के लिए शिक्षा होनी चाहिए क्योंकि शिक्षा का उद्देश्य मानव के व्यक्तित्व को महिमान्वित करना और पूर्णता की ओर ले जाना है।[4] गायत्री मंत्र में भी सर्वोत्तम बुद्धि की ही कामना की गई है।[5]

05.न्याय का अधिकार– वेदकालीन समाज में न्याय पूरी तरह प्रतिष्ठित था। राजा का कर्तव्य था कि वह अपनी प्रजा के अधिकारों को संरक्षण प्रदान करे। वह प्रजा में न्याय द्वारा अपने दायित्वों का निर्वहन करता था। दोषियों को दण्डित कर निर्दोष लोगों को न्याय दिलवाने का कार्य राजा का होता था। राजा भी न्याय दण्ड व्यवस्था का पूर्ण ज्ञाता होता था। उसके राज्य में प्रजा बिना किसी भय व शंका के रहती थी तभी वह राजा श्रेष्ठ व सफल राजा माना जाता था। न्याय उस समय भी था परंतु प्रक्रिया दूसरी थी अब जहाँ न्यायालय है पहले वह स्थान राजा का दरबार होता था।

06.कर लेने का अधिकार– राजा अपनी प्रजा से उनकी आय का छठा भाग कर रूप में ग्रहण करने का अधिकारी होता था। प्रजा भी अपना दायित्व समझ कर अदा करती थी। जिससे राजा का राजकोष समृद्ध होता था तभी वह एक समृद्ध राज्य अथवा देश बन जाता था।

07.स्त्री अधिकार– वेदकालीन समाज में स्त्री और पुरूष समांतर धरातल पर खड़े होते थे पुरूषों की ही भाँति स्त्रियों को शिक्षा प्राप्ति का अधिकार, यज्ञों, धार्मिक अवसरों व उत्सवों, संस्कारों इत्यादि में भाग लेने का पूरा अधिकार था। विवाह की स्वयंवर प्रथा में स्त्री स्वयं अपने वर का वरण करती थी जो आज वर्तमान में प्रेम विवाह के रूप में प्रचलित है। स्त्रियों को समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। वह अपने पति की अर्धांगिनी मानी जाती थी। उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं में विश्ववारा, अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, मैत्रेयी इत्यादि उल्लेखनीय है।

वेदकालीन समाज में स्त्रियों को भी विविध प्रकार की कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार था वह भी पुरूषों की भाँति शिक्षा प्राप्त करने की अधिकारी होती थी। वह सामाजिक उत्सवों में अपनी सहभागिता करने में भी स्वतंत्र होती थी। धार्मिक क्रियाएँ में अपनी उपस्थिति के माध्यम से वह समाज का अभिन्न अंग होती थी। शिक्षा के अतिरिक्त विविध कलाओं और क्रियाओं में निष्णांत होकर व्यक्ति जीविका अर्जन करता था और प्रसन्नचित्त रहता था। प्रत्येक समाज में व्यक्ति अपने और अपने परिवार के पालन–पोषण हेतु किसी न किसी रोजगार से जुड़ता है जिससे धर्नाजन कर वह मूलभूत

RRIJM 2015, All Rights Reserved

आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। वैदिक काल में भी ब्राह्म्ण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्गों में समाज व उनके कार्यों का विभाजन किया गया था। कृषि लोगों के धनार्जन का मुख्य साधन थी। नदियों की नारे मनुष्य जाति विकसित होने लगी और जिनकी आजीविका मुख्य स्त्रोत कृषि होता था। नदियों के उर्वर तटों पर कृषि एवं चारागाह के द्वारा ही जो जीविकोपार्जन किया करती थी, इन्हीं के द्वारा हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक की सभ्यता का निर्माण हुआ।[6] कृषि महत्वपूर्ण कार्य होता था इसके अतिरिक्त चमड़ों के कार्य, लकड़ी के कार्य, माला बनाना, पशुपालन व व्यवसाय करने का भी लोगों को अधिकार प्राप्त था। ऋग्वेद में कृषि कार्य की प्रशंसा की गई है ।[7]

08.<u>मानवाधिकारों के लिए दायित्व निर्वाह</u>– यदि कोई व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति आवाज़ उठाता है तो यह उसके चेतन होने का प्रमाण है परन्तु केवल मात्र हम अधिकारों की ही बात करें अपने दायित्वों का निर्वहन नहीं करते तो यह अनुचित है। कहने का तात्पर्य यह है कि अधिकार और कर्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू है। दोनों एक दूसरे पर निर्भर है। यदि समाज में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों को भलीभाँति सम्पादित करता है तो दूसरे व्यक्ति को अधिकार स्वतः ही प्राप्त हो जाते हैं। जैसे वैदिक काल में लोग 'राष्ट्रवाद' की भावना से युक्त थे। वैदिक ऋषियों ने सम्पूर्ण विश्व के लिए भी एक राष्ट्र की कल्पना की थी। वैदिक सूक्तों में बंधुत्व और भाईचारे से परिपूर्ण होती है। उन्होंने आध्यात्मवाद पर अधिक बल दिया भोगवाद की अपेक्षा। लोग कर्मों के प्रति सचेत रहते थे अनैतिक कार्यों के प्रति लोगों का रूझान नहीं होता था। प्रायः लोग धार्मिक व अनुशासनप्रिय होते थे, धर्म का आचरण करते थे, अधर्म का मार्ग का वरण नहीं करते थे। पर्यावरण को दूषित नहीं करते थे। सब की संपति की भी सुरक्षा करते थे। सचेत रहते थे। अत्यधिक संख्या में यज्ञों को करने का भी विधान था। लोग अपने चरित्र की रक्षा करते थे। कहने का अभिप्राय है कि लोग अपने दायित्वों का निर्वाह पूर्ण सजगता से करते थे। किसी की किसी सी किसी प्रकार की असुविधा महसूस नहीं होती थी। प्राचीन काल में समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार वर्गों में विभाजित था। सभी वर्ग अपने–अपने कर्तव्यों को पूर्ण करते थे। समाज में सुव्यवस्था रहती थी।

09.<u>राजा के अधिकार</u>– आज वर्तमान में सरकार सुशासन की व्यवस्था करती वही वेदकालीन समाज में यह दायित्व राजा के कंधों पर होता था। समाज का सबसे बड़ा व्यवस्थापक राजा धर्मानुसार प्रजापालन करता था। राजा राजनीति का राजा के कर्तव्यों का पूरी तरह जानकार होता था। वह अपनी प्रजा की रक्षा का भार भी वहन करता था। राजा के प्रति प्रजा की श्रृद्धा भी दृष्टिगोचर होती थी। राजा ऐसा कानून नहीं बना सकता था जो धर्म विरूद्ध हो और जिससे राजा को मनमाना अधिकार प्राप्त हो सके।[8] वह अपने खजाने, सेना इत्यादि में वृद्धि के लिए लगातार प्रयासरत रहता था। दूसरे राजाओं के प्रति क्या कूटनीति अपनानी है, कैसे साम्राज्य का विस्तार करना है, शत्रुओं के प्रति क्या कूटनीति अपनानी है, कैसे साम्राज्य का विस्तार करना है, शत्रुओं को कैसे धूल चटानी है ? इत्यादि विषयों पर राजा अपने मंत्रियों से मंत्रणा करता था। इसी प्रकार राजा सुशासन के सभी अंगों से परिचित होता था और उनका पालन भी करता था।

10.<u>स्वस्थता का मानवाधिकार</u>– ऋग्वेद और यजुर्वेद में स्वास्थ्य को अच्छा रखना हमारा मानवाधिकार है न केवल अपना अपितु अपने साथ दूसरों को भी स्वास्थ्य का चिंतन हमारा कर्तव्य है। स्वास्थ्य के मानवाधिकार की बात भी विभिन्न स्थलों पर दृष्टिगोचर होती है न केवल मनुष्य पशुओं के भी स्वास्थ्य रहने की कामना की है ।[9]

यथा – मां तो रिषत, खनिता, यस्मै चाहं खनामि वः।
द्विपाच्यतुष्पादस्माकं, सर्वमस्त्वनातुरम्।।
(यजुर्वेद 12–95)

<u>उपसंहार</u>–

निष्कर्षतः कहा जा सकता है वेदकालीन समाज में मानवाधिकार की अवधारणा विद्यमान थी यद्यपि मानवाधिकार शब्द का प्रथम प्रयोग संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में 25 जून, 1945 को किया तथापि मानव विकास की यात्रा में उपयोगी होने के कारण वेदों में मानवाधिकार की अवधारणा बीज रूप में विद्यमान है जिनका यदि हम सूक्ष्मता से अध्ययन व अनुशीलन करे तो मार्गदर्शन प्राप्त कर अधिक समृद्ध बन सकते हैं।

मानवाधिकारों की संवैधानिक घोषणा भले ही बाद में हुई परन्तु उनकी पैठ प्रत्येक समाज व काल में देखी जा सकती है। मनुष्य को जन्म के पश्चात् कुछ अधिकार मिलते हैं जिन्हें हम मौलिक अधिकार कहते हैं और कुछ अधिकार व व्यवस्था उसे सम्मान, स्वाभिमान और सुरक्षा से जीवन व्यतीत करने के लिए संवैधानिक रूप से दिये जाते हैं। जिन्हें हम मानवाधिकार के रूप में चिन्हित करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अधिकारों के संरक्षण के लिए 10 दिसम्बर, 1948 को एक प्रतिवेदन तैयार किया, 1993 को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना भारत में हुई। हमारे देश में प्राचीनकाल से ही

RRIJM 2015, All Rights Reserved

मनुष्यता का सम्मान रहा है। भारतीय समाज अपने कर्तव्यों व अधिकारों के प्रति सचेत रहा है। सभी लोगों के सुख में अपना सुख देखना, एक–दूसरे का सम्मान करना इत्यादि भाव हमें वैदिक संस्कृति में भी देखने को मिलते हैं जो हमारे जीवन का अमूल्य अंग है। अतः वेदों में मानवाधिकारो के विषय में वर्णन विभिन्न स्थलों पर मिलता है। आज वर्तमान में मानवाधिकारों का स्वरूप और भी सुदृढ़ और विस्तृत है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

01. संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्बन्ध में बुनियादी तथ्य, संयुक्त राष्ट्र सूचना केन्द्र द्वारा अनुदित व प्रकाशित, 2001, पृष्ठ – 243
02. ऋग्वेद संहिता – 9/112/ 01, दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली।
03. संगचछध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
    देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।
    ऋग्वेद संहिता 10/192/02 दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली।
04. ऋग्वेद संहिता दशम मण्डल, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली।
05. ऋग्वेद संहिता, 3/62/10, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली
    ''ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमही
    धियो यो नः प्रचोदयात्''
06. फ्रैडरिच मैक्समूलर : इण्डियाः हॉट कैन इट टीच अस पृ. 95–96, 1899प्ठछ. 978–81–716–7920–1
07. क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि।
    गामंश्वं पोषयित्न्वा स नो मृलातिदृशे
    ऋग्वेद (क्षेत्रपति सूक्त) 4/57/01 .....
08. कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ. 259, व्याख्याकार – डॉ. वाचस्पति गैरोला, 1962, वाराणसी।
09. यजुर्वेद संहिता 12/95, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली।
10. ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि, पं. विश्वेश्वर नाथ रेउ 1967, बनारस।
11. वेदकालीन समाज, डॉ. शिवदत्त ज्ञानी, चौखम्भा विद्या भवन, 1967, वाराणसी।
12. वैदिक संस्कृति और सभ्यता, डॉ. मुंशीराम शर्मा, ग्रन्थम् प्रकाशन, कानपुर, 1968।
13. प्राचीन भारत का इतिहास, डॉ. रमा शंकर तिवारी, मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, 1977।
14. वेद दिग्दर्शन, पं. माधवाचार्य शास्त्री, माधव पुस्तकालय, संस्करण, 2003, दिल्ली।
15. वैदिक साहित्य और संस्कृति, बलदेव उपाध्याय, संस्करण, 1973, शारदा संस्थान, वाराणसी।
16. वेदों में मानवाधिकार विमर्श, डॉ. वीरेन्द्र यादव।
17. ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर (4भाग)
18. भारतीय धर्म और दर्शन, बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा ओरियन्टल, 1977।

RRIJM 2015, All Rights Reserved